P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-4* ISSUE-1* (Part-2) April- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

भारत के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में पं0 दीन दयाल उपाध्याय की भूमिका

पीयूष कुमार श्रीवास्तव
शोध छात्र,
समाज शास्त्र विभाग,
महात्मा गांधी चित्रकूट
ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट, सतना, म..प्र., भारत

सारांश

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज के बाहर मानव का अस्तित्व संभव नहीं है सामान्य तौर पर अधिकांश विचारकों ने समाज की व्याख्या समूह के रूप में की है परन्तु समाजशास्त्र में समाज की व्याख्या सामाजिक सम्बन्धों के जाल के रूप में की गई हैं। अर्थात सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर निर्मित व्यवस्था को समाज कहा गया है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी कृति वैकल्पिक मार्ग एकात्म मानव दर्शन में समाज निर्माण को समझाने का प्रयास किया है। उनका मानना था कि पाश्चात्य दर्शन जिसमें कहा गया है कि समाज व्यक्तियों का समूह है जो व्यक्तियों ने स्वयं मिलकर बनाया है अर्थात यह व्यक्तियिों के समझौते के आधार पर बना है। इसको 'सामाजिक समझौता सिद्धान्त' (Social Contract Theory) नाम से जाना जाता है इसलिए वहां अधिक महत्व व्यक्ति का है जो कि समाज की रचना करता है पश्चिम में यह विचार विवाद का विषय बना रहा। किसी ने समाज का पक्ष किया तो किसी ने व्यक्ति का और उसमें संघर्ष की स्थिति पैदा हुई। सत्य तो यह है कि उनका यह विचार कि समाज का निर्माण व्यक्तियों ने किया मूलतः गलत है।

मुख्य शब्द : सामाजिक, आर्थिक विकास, सामाजिक समझौता, सिद्धान्त।

प्रस्तावना

समाज व्यक्तियों का मिला हुआ समूह है यह बात सत्य होने पर भी व्यक्तियों ने समाज को बनाया या व्यक्ति मिले और समाज बना ऐसा कहीं भी दिखाई नहीं देता है।

समाज स्वयंभू हैः पंडित के विचारानुसार समाज स्वयंभू है जिस प्रकार व्यक्ति पैदा होता है इसी प्रकार समाज भी पैदा होता है। व्यक्ति मिलकर कभी समाज को नहीं बनाते। यह कोई आमोद–प्रमोद गृह (क्लब) नहीं है। संयुक्त समवाय (ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनी) जैसी सत्ता भी नहीं है या जैसे पंजीकृत समितियां बनती हैं वैसे पंजीकृत समिति भी नहीं है। जिसका अपना एक जीवन है इसलिए यह उसी प्रकार से जीवमान सत्ता है जैसे मनुष्य जीवमान सत्ता। समाज को हमने किसी प्रकार के कृत्रिम संगठन के रूप में स्वीकार नहीं किया।

समाज की अपनी हस्ती होती है। समाज के भी व्यक्ति की भांति शरीर मन बृद्धि और आत्मा होते हैं। इस बात को कुछ पश्चिम के लोग तथा मनोवैज्ञानिक भी अब स्वीकार करने लगे हैं।

परन्तु जिसे हम समाज कहते हैं और उसकी जो मानसिकता होती है वह तो बहुत समय से बनती रहती है कुछ लोगों के कथनानुसार जब एक समूह बहुत समय तक इकट्ठा रहता है तब साथ–साथ रहते हुए वातावरण के परिमाण स्वरूप एक साथ रहने की आदत पड़ने से उनकी सोचने एवं विचार करने की प्रणाली बन जाती है और अपनी पद्धतियां निर्मित हो जाती हैं यह तो सत्य है कि साथ रहने से लोगों में कुछ बातों में एकता हो जाती है। ''समान शीलेव्यसनेषु सख्यम'' किन्तु जिसे राष्ट्रया समाज कहते हैं वह इतने मात्र से नहीं बनता।[1]

ईश्वर का प्रत्यक्ष और विराट स्वरूप आज समाज ही है वहीं विराट पुरूष है यही मानकर हम चले और अपने समस्त कर्मों के फल हम समाज को अर्पण कर दें।

अब समाज की बात उठती है तो उसके विषय में भी हमारी कल्पना स्पष्ट हो जानी आवश्यक है भारतीय समाज रचना में व्यक्ति अर्थात व्यष्टि को प्रमुख स्थान दिया गया है। व्यष्टि से ही समष्टि का निर्माण होता है। हम समाज में व्यक्ति और परिवार से लेकर ग्राम और अखिल विश्व तक की कल्पना करते हैं। इसलिए जो कुछ हम उत्पन्न करें उसे सम्पूर्ण राष्ट्र के हित में व्यय कर दें।

राष्ट्र ही हमारे कर्म की प्रेरणा का स्त्रोत है। यही भावना भारतीय संस्कृति के आर्थिक रूप का मूल आधार है।[2]

यदि हम भारतीय जनसंघ की अर्थनीति की बात करें तो भारतीय ऋषियों ने जीवन में श्रम की अन्यतम महत्ता को भली भांति जान लिया था और इसीलिए उन्होंने 'श्रम' को धर्म का पहला लक्षण बताया है। श्रम की महत्ता का ज्ञान मार्क्स और एंसजेल्स के जन्म तक रूका नहीं रहा वह अति पुरातन काल में सहज अनुभूमि से हमने मानवता को दे दिया था।

श्रम मनुष्य का कर्तव्यः समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार कर्म अवश्य करना चाहिए अर्थनीति में भी कहा गया है कि श्रम करना मनुष्य का मूलभत कर्तव्य है। इसी प्रकार मनुष्य को श्रम करने का यह अधिकार देना राज्य का भी मूलभूत कर्तव्य हो जाता है। आज जब समाज व्यवस्था बिगड़ी हुई है। और श्रम करने वाले मनुष्य को भी पहले तो उसे श्रम करने का अवसर ही नहीं मिलता अवसर मिले भी तो उसे भर पेट खाना नसीब नहीं होता तब राज्य की अपेक्षा में मनुष्य का यह श्रम करने का कर्तव्य न रहकर अधिकार बन जाता है। और इसी अधिकार की मांग, उसकी स्थापना तथा उसी पर आधारित व्यवस्था की रचना ही उसका मुख्य कर्तव्य अथवा परम धर्म बना जाता है।

श्रम का अधिकार मनुष्य का संवैधानिक अधिकार है। राज्य का यह पहला कर्तव्य है कि वह प्रत्येक नागरिक को उसकी योग्यता व क्षमता के अनुसार काम करने का अवसर दे। इन अवसरों में किसी भी प्रकार का भेदभाव न जाति का, न रंगभेद और न लिंग का होंने दें। राष्ट्र के आर्थिक पुननिर्माण की जो भी योजना बनाई जाये उसका उद्देश्य सभी व्यक्तियों को काम दिलाना होना चाहिए।[3]

भारत में कृषि क्षेत्र की आय बढ़ाने के लिए आज भूमि व्यवस्था में परिवर्तन की महति आवश्यकता है क्योंकि जो काम करने वाले हैं उनके पास भूमि का अभाव है और भूमि के मालिक हैं वे काम करना नहीं चाहते हैं। इसीलिए जनसंघ की अर्थनीति में बताया गया है कि कृषि क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने और सम्पूर्ण जनशक्ति का उपयोग करने के लिए वर्तमान भूमि व्यवस्था को बदलने की आवश्यकता है भूमि का पुनः वितरण करना होगा प्रश्न खड़ा होता है कि इस वितरण का आधार क्या हो? काम का अधिकार सिद्धान्त के अनुसार इसका सीधा उत्तर यह है कि जोतने वाले जमीन के अधिकारी बनें।[4]

मनुष्य के जीवन का सर्वागपूर्ण विचार ऐसी किसी भी अर्थरचना की कल्पना नहीं कर सकता जिसमें नैतिक सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिस्थापना किये बिना ही मनुष्य को सूखी बनाया जा सके। इतना ही नहीं कोई भी अर्थरचना अपनी सफलता और अभिव्यक्ति के लिए इच्छा, उत्साह और सामर्थ्य का सृजन स्वयं नहीं कर सकती अपनी गति से बराबर गतिमान अर्थव्यवस्था असंभव है। उसे गति देने के लिए और बाद में भी कम से कम रूकावट के साथ सुचारू रूप से चलते रहने के लिए व्यक्ति और समाज के जीवन में प्रेरणा का स्त्रोत अर्थ के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र ढूंढ़ना होगा। राष्ट्र की राजनैतिक महत्वाकांक्षायें, प्रेरणायें, अर्थरचना को बनाने और टिकाने में सहायक होती है। अतः हम समाज या व्यक्ति की समस्याओं एवं उनके लक्ष्यों का टूकड़ों में विचार नहीं कर सकते यह हो सकता है कि समय विशेष पर हम किसी एक अंग को अधिक महत्व दें किन्तु हम शेष की भी अवहेलना नहीं कर सकते हैं।[5]

समाज सेवा के कार्यक्रमों का एक अन्य आर्थिक पहलू भी है। शिक्षित बेकारों की समस्या को सुलझाने में इससे भारी सहायता मिलेगी यदि हमने प्राथमिक शिक्षा एवं साक्षरता का व्यापक कार्यक्रम लिया तो साधन स्त्रोतों पर विचार करते हुए शिक्षा का यह क्षेत्र यदि विकेन्द्रित करके ग्राम पंचायतों के सुपुर्द कर दिया जाय तो ठीक रहेगा।

समाज सेवाओं और भवन निर्माण के कार्यक्रम साधारण तथा जनता में क्रय शक्ति बढ़ाने और इस प्रकार शिक्षित अर्थव्यवस्था को चेतन करने हेतु अपनाये जाते हैं। छोटे–छोटे उद्योग धन्धों के बने माल को खपाने के लिए जहां एक ओर कृषक को फसल का उचित मूल्य प्रदान कर उसके हाथ में अधिक क्रय शक्ति देनी होगी वहीं दूसरी ओर उक्त कार्यक्रमों से अन्य बेकारों की आमदनी बढ़ानी होगी। यह बढ़ी हुई क्रय शक्ति अपने गुणक प्रभाव से अनेक उद्योग धन्धों को चालू रख सकेगी। विदेशों से पूंजी मंगाने और इस प्रकार समाज सेवाओं में खर्च करने में से यदि एक को चुनना पड़े तो हम दूसरे को चुनेंगे।[06]

पण्डित जी हमेशा से ही निर्धनों के पक्षधर रहे हैं वे गरीबी अमीरी की खाई को पाटना चाहते थे इसीलिए उन्होंने अपने एकात्म मानव दर्शन में कहा है धनाढ्यों के धन की बढ़ोतरी प्रगति का परिचायक नहीं है। निर्धनों के परिवारों में सुख सुविधाओं की उपलब्धि ही प्रगति की वास्तविकता है।[7]

एकात्म मानव दर्शन के अनुसार फसलों के विकास की प्रक्रिया जैविक है अतः जैविक ही कृषि भूमि की प्राकृतिक खाद है इसमें यह भी कहा गया है कि अर्थ का अभाव तथा प्रभाव दोनों ही पतन का कारण बनते हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी सम्पूर्ण देश एवं विश्व के देशों के भ्रमण के दौरान अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि परिस्थितियां ही व्यक्ति का निर्माण करती हैं लेकिन हम संगठित होकर छोटे–छोटे प्रयास करें तो परिस्थितियों को भी बदल सकते हैं इस सम्बन्ध में पं0 दीन द्याल जी ने कहा कि विशालकाय कारखानों से नहीं अनेक हाथों से विफल उत्पादन के द्वारा समाज में समता समृद्धि, तथा सुख सुविधायें बढ़ाई जा सकती हैं।

भारत में औद्योगिक नीति एकात्मकता के आधार पर चला करती थी। उद्योग के तीन अंग हैं – पूंजी, श्रम एवं प्रबंध उद्योग की सफलता इन तीन अंगों की परस्पर पूरकता पर निर्भर करती है। उद्योग का लक्ष्य था समाज की आवश्यकता पूर्ण करना। उद्योगों की इकाई परिवार होती थी। इसलिए समाज में विषमता नहीं थी।[08]

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का लेखन का उद्देश्य भारत में सामाजिक एवं आर्थिक विकास में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा समाज में किये गये विचारों का वर्णन किया गया है।

निष्कर्ष

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार प्रतिशील तकनीकि वहीं है जो बेकारी मिटाये विषमता घटाये और प्रदूषण से बचायें। समाज में एक भले प्रकार का जनमानस समूह तैयार हो जिससे समाज निरन्तर प्रगतिशील बना रहे।

अंत टिप्पणी

1. *वैकल्पिक मार्गः एकात्म मानव दर्शन पं0 दीन द्याल उपाध्याय बसंत राज पण्डित, सेकेटरी दानद्याल शोध संस्थान, दि बुक सेंटर लि0 साथन मुम्बई 400022 पृ0 सं0 25–26*
2. *डा0 महेशचन्द्र शर्माः दीन द्याल उपाध्याय सम्पूर्ण वाड्.मय खक–चार प्रभात प्रकाशन 4/19 आसफ अली रोड़ नई दिल्ली. 110002 पृ0 सं0 – 21–22*
3. *उपरोक्त खण्ड – 3 पृ0 सं0– 60*
4. *उपरोक्त खण्ड – 3 पृ0 सं0– 61*
5. *डा0 महेश चन्द्र शर्मा दीन द्याल उपाध्याय सम्पूर्ण वाड्.मय खण्ड – 6 पांच प्रभात प्रकाशन 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली – 110002 पृ0 – 187*
6. *डा0 महेश चन्द्र शर्मा दीन द्याल उपाध्याय सम्पूर्ण वाड्.मय खण्ड – 6 पांच प्रभात प्रकाशन 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली – 110002 पृ0 सं0 274 – 275*
7. *डा0 नंदिता पाठकः स्वामी विवेकानन्द के जीवन में एकात्म मानव दर्शन अथय महाजन द्वारा दीन द्याल शोध संस्थान के लिए 7–ई स्वामी रामतीर्थ नगर झण्डे वाला एक्स. नई दिल्ली 110055 पृ0 सं0 – 05–06*
8. *डा0 नंदिता पाठकः स्वामी विवेकानन्द के जीवन में एकात्म मानव दर्शन अथय महाजन द्वारा दीन द्याल शोध संस्थान के लिए 7–ई स्वामी रामतीर्थ नगर झण्डे वाला एक्स. नई दिल्ली 110055 पृ0 सं0 12*